खण्ड 2 इन्द्रिय निग्रह

इकाई 6 इन्द्रियों का अभिप्राय, संख्या तथा स्वभाव (गीता – 2/59, 60, 64, 67)

इकाई 7 मन सहित इन्द्रिय–निग्रह की आवश्यकता (गीता –2/3, 4/5)

इकाई 8 गीता में इन्द्रियनिग्रह व इन्द्रियनिग्रह फल (गीता –2/58, 2/61, 6/35)

इकाई 9 गीता में स्थितधी की प्रशंसा (गीता –2/70, 72)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 2 का परिचय

"गीता में आत्मप्रबन्धन" पाठ्यक्रम का यह द्वितीय खण्ड है। इस खण्ड में चार इकाइयाँ है। इस खण्ड की सभी इकाइयाँ गीता में 'इन्द्रियनिग्रह' से सम्बन्धित हैं। जिसके अन्तर्गत आप गीता में इन्द्रिय का अभिप्राय, इन्द्रिय संख्या, इन्द्रियों का स्वभाव, मन सहित इन्द्रियनिग्रह की आवश्यकता, इन्द्रियनिग्रह का फल, स्थितधी की प्रशंसा इत्यादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करेंगे। आधुनिक समय में मनुष्य तनावग्रस्त जीवनशैली के कारण अनेक बीमारियों का शिकार हो रहा है। इस हेतु गीता में बताया गया है कि इन्द्रियनिग्रह के द्वारा मनुष्य अपने अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करता हुआ ऐहलौकिक एवं पारलौकिक सुख की प्राप्ति कर सकता है। इस खण्ड के अन्तर्गत आप गीता में इन्द्रिय निग्रह से सम्बन्धित श्लोकों का अन्वय, अनुवाद और व्याख्या सहित अध्ययन करेंगे।

तकनीकि और कठिन शब्दों को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक इकाई में आवश्यक शब्दावली दी गयी है। साथ ही अध्ययन में उपयोगी पुस्तकों की सूची प्रत्येक इकाई के अन्त में दी गयी है। इन पुस्तकों के सहयोग से आप सम्बन्धित विषय का और विस्तृत अध्ययन कर सकते है।

शुभकामनाओं के साथ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 इन्द्रियों का अभिप्राय, संख्या तथा स्वभाव

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 गीता का सामान्य परिचय

6.3 इन्द्रियों का अभिप्राय

- 6.3.1 इन्द्रिय शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ
- 6.3.2 गीता में इन्द्रिय का अभिप्राय
- 6.3.3 अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय में इन्द्रिय

6.4 इन्द्रियों की संख्या

6.5 इन्द्रियों का स्वभाव

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- गीता का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- इन्द्रिय शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ से परिचित हो जायेंगे।
- दार्शनिक सम्प्रदाय में इन्द्रिय के अर्थ से सुपरिचित हो सकेंगे।
- गीता में इन्द्रियों के अभिप्राय से अवगत हो सकेंगे।
- गीता में इन्द्रियों की संख्या से परिचित हो जायेंगे।
- गीता में इन्द्रियों के स्वभाव से अवगत हो सकेंगे।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली स्मरण कर पायेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या 6 गीता में इन्द्रियनिग्रह खण्ड के अन्तर्गत आती है । इसके अन्तर्गत इन्द्रियों का अभिप्राय, इन्द्रियों की संख्या, इन्द्रियों का स्वभाव का परिचय दिया गया है।

इन्द्रियाँ स्वभाव से बहिर्मुखी है अर्थात् सांसारिक विषयों की ओर दौड़ती है। इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने के लिए उनका निग्रह करना आवश्यक है । गीता में इन्द्रिय निग्रह से तात्पर्य है कि जब कोई मनुष्य अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर एक विषय (परमात्मा) में नियन्त्रित कर ले उसे ही इन्द्रियनिग्रह कहते है ।

संकल्प–विकल्पात्मक मन इन्द्रियों के माध्यम से ही सांसारिक विषयों में रमण करता है और जब इन्द्रियनिग्रह के द्वारा इन्द्रियों का व्यापार रूक जाता है तो मन भी अध्यवसाय बुद्धि के अनुसार अभीष्ट लक्ष्य या परमात्मा की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो जाता है ।

6.2 गीता का सामान्य परिचय

विश्व साहित्य में गीता का अद्वितीय स्थान है । दार्शनिक परम्परा में गीता प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत स्मृति–प्रस्थान के रूप में गृहीत है । गीता भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा मोहग्रस्त अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए दिया गया उपदेश है । यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निःसृत परम रहस्यमयी दिव्य वाणी है । इसमें स्वयं भगवान् श्रीकष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए उपदेश दिया है । इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण ने अपने हृदय के बहुत ही विलक्षण भाव भर दिये हैं, जिनका आज तक कोई पार नहीं पा सका और न पा ही सकता है । गीता महाभारत का ही अंश है, महाभारत के अन्तर्गत भीष्मपर्व के 25 वें अध्याय से लेकर 42 वें अध्याय तक 700 श्लोकों में लिखा गया है । यह ग्रन्थ अठारह अध्यायों में विभाजित हैं ।

गीता का शब्दार्थ –

'गै गाने' धातु से भूतकाल में निष्ठाप्रत्यय 'क्त' तथा स्त्रीलिंगी 'टाप्' प्रत्यय करने पर गीता शब्द निष्पन्न होता है । जिसका अर्थ है गाई गई या कही गई । महाभारत युद्ध के समय युद्ध का परित्याग करने की इच्छा पर अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया वही गीता है –

समापोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे ।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ॥ (महाभारत, शान्तिपर्व – 348.8)

गीता के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि समस्त उपनिषदें गायें हैं, उसके दुहने वाले गोपालनन्दन श्रीकृष्ण है, अर्जुन बछड़ा है और विद्वान् गीतारूपी महान् अमृत का पान करने वाले हैं –

सर्वोपनिषदो गावः दोग्धा गोपालनन्दनः
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ – गीता माहात्म्यम्

6.3 इन्द्रियों का अभिप्राय

6.3.1 इन्द्रिय शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

"इन्द्र" शब्द से "घ" अथवा "इय" प्रत्यय द्वारा इन्द्रिय शब्द की निष्पत्ति है जिस के लिए पाणिनि की इस प्रकार की व्यवस्था है –

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा।(पाणिनि सूत्र 5/2/93)

इस सूत्र के अनुसार इन्द्रिय वह पदार्थ है जो इन्द्र का लिंग अथवा इन्द्र द्वारा दृष्ट, सृष्ट, जुष्ट या दत्त हो। यहाँ काशिकाकार ने इन्द्र से 'आत्मा' अर्थ लिया है। गोपथ ब्राह्मण में कहा है –

यन्मनः स इन्द्रः (गोपथ ब्राह्मण 2/4/11)

मन इन्द्र है। इस प्रकार मन के द्वारा सेवित पदार्थों का इन्द्रियत्व प्रमाणित होता है और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की सृष्टि में भी मन का हाथ माना गया है ।

6.3.2 गीता में इन्द्रिय का अभिप्राय

गीता में इन्द्रियों को मानसिक द्वन्द्वों का कारण माना गया है । यद्यपि इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं किन्तु विषयों से पुरुष का राग निवृत्त न होने के कारण ये विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक विषयों की ओर घसीट ले जाती हैं –

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ (गीता – 2/60)

इन्द्रियों को मनुष्य के मन को झकझोर देने वाली या मथ देने वाली कहा है क्योंकि जब तक विषयों में आसक्ति बनी रहती है तब तक इन्द्रियाँ मनुष्य के मन को बार–बार विषय सुख का प्रलोभन देती रहती हैं । इन्द्रियाँ विवेकशील पुरुष के मन को भी हरने वाली होती है ।

गीता में बताया है कि बुद्धि मन से भी श्रेष्ठ है और मन उसके अधीन है । परन्तु जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं कर पाते उसकी बुद्धि अपने वास्तविक स्वरूप अध्यवसायात्मक रूप में नहीं रहती अतः ऐसे पुरुष की बुद्धि को भी इन्द्रियानुगामी मन विषयों की ओर खींच लेता है–

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ (गीता – 2/67)

गीता में कहा गया है कि जो मूढचित्त पुरुष कर्मेन्द्रियों को संयत कर मन से इन्द्रियों के विषयों का स्मरण करता रहता है वह मिथ्याचारी है किन्तु जो इन्द्रियों को मन से संयत कर कर्मेन्द्रियों द्वारा अनासक्त कर्मयोग करता है वह विशिष्ट है । यहाँ "इन्द्रिय" शब्द से बुद्धीन्द्रिय का अर्थ लेने से उनकी प्रधानता प्रकट होती है –

कर्मेन्दियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते (गीता –3/6)

यहाँ कर्मेन्द्रियाणि पद का अभिप्राय पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा) से ही नहीं हैं, प्रत्युत इनके साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण) से भी है । गीता में कर्मेन्द्रियों के अन्तर्गत ही ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं । इसलिये गीता में 'कर्मेन्द्रिय' शब्द तो आता है पर 'ज्ञानेन्द्रिय' शब्द कहीं नहीं आता ।

इन्द्रियाँ विषयों से श्रेष्ठ हैं – (इन्द्रियाणि पराण्याहु : । गीता – 3/42)

शरीर अथवा विषयों से इन्द्रियाँ श्रेष्ठ है । तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ज्ञान होता है, पर विषयों के द्वारा इन्द्रियों का ज्ञान नहीं होता । इन्द्रियाँ विषयों को प्रकाशित करती हैं । इन्द्रियाँ व्यापक हैं और विषय व्याप्य हैं अर्थात् विषय इन्द्रियों के अन्तर्गत आते हैं, पर इन्द्रियाँ विषयों के अन्तर्गत नहीं आतीं । विषयों की अपेक्षा इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं । इसलिए विषयों की अपेक्षा इन्द्रियाँ श्रेष्ठ, सबल, प्रकाशक, व्यापक और सूक्ष्म हैं ।

6.3.3 दार्शनिक सम्प्रदाय मत में इन्द्रिय

- तर्कभाषाकार केशव मिश्र ने इन्द्रिय का लक्षण इस प्रकार किया है –

शरीरसंयुक्तं ज्ञानकरणमतीन्द्रियम् इन्द्रियम् ।

जो शरीर से संयुक्त हो, ज्ञान का करण हो और अतीन्द्रिय हो, उनको इन्द्रिय कहते है।

- सांख्य दर्शन के अनुसार जिसकी अभिव्यक्ति में सात्त्विक अहंकार उपादान कारण हो वह इन्द्रिय है।
- मन, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ इन्द्र अर्थात् पुरुष के लिङ्ग होने के कारण इन्द्रिय कहलाती हैं । वाचस्पति मिश्र ने भी इन्द्रिय का आशय आत्मा का ज्ञापक ही माना है।
- जैन आचार्यों ने आत्मा के लिंग को इन्द्रिय कहा है । इन्द्रियाँ आत्मा के अस्तित्व की परिचायक के साथ–साथ आत्मा के द्वारा होने वाले संवेदन की साधन भी हैं।
- बौद्ध के अनुसार इन्द्रियाँ गोलक हैं और विभिन्न प्रकार के परमाणुओं से निर्मित होने के कारण भौतिक हैं।

6.4 इन्द्रियों की संख्या

श्रीमद्भगवद्गीता में इन्द्रियों की संख्या ग्यारह बताई गई हैं –

इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः (गीता – 13/5)

दश इन्द्रियाणि– श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण –ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनसे व्यक्ति को विषयों का ज्ञान होता है । तथा वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं क्योंकि इनका कर्मों की ओर झुकाव होता है ।

एकं च–और एक मन जो कि संकल्प–विकल्पात्मक है । मन को उभयात्मक इन्द्रिय कहा गया है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी ।

इन्द्रियगोचराः–इन्द्रियों द्वारा जो ग्राह्य स्थूल विषय हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्हीं का वाचक यह 'इन्द्रियगोचराः' पद है ।

इन्द्रियाणि मनश्चास्मि। (गीता – 10/22)

नेत्र, कान आदि सब इन्द्रियों में मन मुख्य है । सब इन्द्रियाँ मन के साथ रहने से मन को साथ में लेकर ही काम करती हैं । मन साथ में न रहने से इन्द्रियाँ अपना काम नहीं करती । यदि मन का साथ न हो तो इन्द्रियों के सामने विषय आने पर भी विषयों का ज्ञान नहीं होता । मन में यह विशेषता भगवान् श्रीकृष्ण से आयी है । इसलिए गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि मैं इन्द्रियों में मन हूँ ।

अतः इस प्रकार गीता में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा) और संकल्प–विकल्पात्मक मन को मिलाकर इन्द्रियों की संख्या ग्यारह मानी गयी हैं ।

- उपनिषदों में इन्द्रियों की संख्या कहीं सात, कहीं नौ एवं कहीं ग्यारह कही गई हैं – पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और मन । विवेकचूडामणि में आचार्य शंकर

ने इन्द्रियों की संख्या दस बताई हैं – श्रवण, त्वचा, नेत्र, घ्राण और जिह्वा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, क्योंकि इनसे विषयों का ज्ञान होता है तथा वाक्, पाणि, पाद, गुदा और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं क्योंकि इनका कर्मों की ओर झुकाव होता है।

- न्याय–वैशेषिक दर्शन में इन्द्रियों की संख्या छह है – घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र– ये पाँच तो बाह्येन्द्रियाँ हैं, और मन आभ्यन्तर इन्द्रिय है जिसे अन्तःकरण कहते हैं।
- सांख्यदर्शन के अनुसार इन्द्रियों की संख्या ग्यारह है – पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, और मन।

6.5 इन्द्रियों का स्वभाव

भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते है कि हे अर्जुन! इन्द्रियाँ इतनी प्रबल तथा वेगवान् हैं कि वे उस विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक हर लेती हैं। इन्द्रियों को केवल कृष्ण की भक्ति के बल से वश में किया जा सकता है । श्रीकृष्ण कहते है कि जो इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखते हुए इन्द्रिय–संयमन करता है और अपनी चेतना को मुझ में स्थिर कर देता है, वह मनुष्य स्थिरबुद्धि कहलाता है ।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ गीता – 2/61

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है – साधक को सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में बताया गया है कि आत्मसिद्ध व्यक्ति की कसौटी यह है कि वह अपनी योजना के अनुसार इन्द्रियों को वश में कर सके, किन्तु अधिकांश व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के दास बने रहते हैं और इन्द्रियों के कहने पर चलते हैं । इन्द्रियों की तुलना विषैले सर्प से की गई है । इन्द्रियाँ अत्यन्त स्वतंत्रतापूर्वक तथा बिना किसी नियन्त्रण के कर्म करना चाहती हैं । योगी या भक्त को इन इन्द्रिय–रूपी सर्पों को वश में करने के लिए एक सपेरे की भाँति अत्यन्त प्रबल होना चाहिए । इन्द्रियभोग पर संयम के बिना कृष्णभावनामृत में स्थिर हो पाना असम्भव है। श्रीमद्भगवद्गीता में इन्द्रियों का कछुए के दृष्टान्त के माध्यम से इस प्रकार वर्णन किया गया है –

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (गीता– 2/58)

जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को संकुचित करके खोल के भीतर कर लेता है, उसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय–विषयों से खींच लेता है, वह पूर्ण चेतना या ज्ञाननिष्ठा में दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाता है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ (गीता –2/59)

अन्वयः– निराहारस्य देहिनः विषयाः विनिवर्तन्ते। परं दृष्ट्वा अस्य रसवर्जं रसः अपि निवर्तते॥

शब्दार्थ– निराहस्य = इन्द्रियों के द्वारा विषयों (आहार) को ग्रहण न करने वाले, देहिनः = मनुष्य के, विषयाः – रूपरसादि विषय, विनिवर्तन्ते = निवृत्त हो जाते हैं, परम् = परमतत्त्व (परमात्मा) को, दृष्ट्वा = देखकर, अस्य – इस स्थितप्रज्ञ मनुष्य का, रसवर्जम् – रस मात्र को छोड़कर, रसः = रस या राग, अपि = भी, निवर्तते = छूट जाता है।

हिन्दी अर्थ– इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल रूपरसादि विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती । इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की आसक्ति परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है ।

व्याख्या– विषया विनिवर्तन्ते निराहास्य देहिनः रसवर्जम् – मनुष्य निराहार दो प्रकार से होता है –

1) अपनी इच्छा से भोजन का त्याग कर देना अथवा बीमारी आने से भोजन का त्याग हो जाना।
2) सम्पूर्ण विषयों का त्याग करके एकान्त में बैठना अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटा लेना ।

यहाँ इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले साधक के लिए ही निराहारस्य पद आया है।

रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते – इस स्थितप्रज्ञ की रसबुद्धि परमात्मा का अनुभव हो जाने पर निवृत्त हो जाती है। रसबुद्धि निवृत्त होने से वह मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

टिप्पणी –

देहिन इन = देहिन् का षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

रसवर्जम् – रस + वर्जम् (वृज् + णमुल् – वर्जम् अव्यय है ।) वर्जयित्वा के स्थान पर वर्जम् का प्रयोग प्रायः समास में होता है ।

छन्द – अनुष्टुप

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ (गीता – 2/60)

अन्वय– कौन्तेय हि यततः विपश्चितः पुरुषस्य अपि मनः प्रमाथीनि इन्द्रियाणि प्रसभम् हरन्ति।

शब्दार्थ– कौन्तेय = कुन्तीपुत्र ! हे अर्जुन !, हि = जिस कारण से, यततः = प्रयत्न करते हुए, विपश्चितः = बुद्धिमान्, पुरुषस्य = मनुष्य के, अपि = भी, मनः – मन को, प्रमाथिनी = प्रकृष्टरूप से मथ देने वाली, इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ, प्रसभम् = बलपूर्वक, हरन्ति = हर लेती है ।

हिन्दी अर्थ –हे अर्जुन ! बुरी तरह से झकझोर देने वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए विवेकयुक्त पुरुष के मन को भी जबरदस्ती विषयों में घसीट ले जाती हैं, विवेकहीन पुरुषों की तो फिर बात ही क्या है?

व्याख्या– इन्द्रियों को यत्न करते हुए विवेकशील मनुष्य के भी मन को हरने वाली कहा है । जो व्यक्ति शास्त्र के स्वाध्याय से विषयों के दोषों को जान लेता है वह विवेकी है । विवेकी पुरुष उपासनादि कर्मों से अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करके नियन्त्रित रखता है । प्रमथनशील इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुषों के मन को बलपूर्वक हर लेती है ।

टिप्पणी–

कौन्तेय – कुन्ती + ढक् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय) ।

इन्द्रियाणि – 'इन्द्रिय' शब्द का प्रथमा, बहुवचन (नपुंसकलिंग) ।

यततः – यत् + शतृ (अत्) षष्ठी विभक्ति, एकवचन, पुल्लिंग ।

विपश्चितः – 'विपश्चित्' का षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।

मनः – 'मनस्' का द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

हरन्ति– हृ + लट्, प्रथम पुरुष बहुवचन ।

छन्द – अनुष्टुप

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ (गीता – 2/64)

अन्वय– विधेयात्मा तु आत्मवश्यैः रागद्वेषवियुक्तैः इन्द्रियैः विषयान् चरन् प्रसादम् अधिगच्छति।

शब्दार्थ – विधेयात्मा = अन्तःकरण या बुद्धि सेवक बन गई जिसकी अर्थात् जो बुद्धि पूर्वक निर्णय लेने में समर्थ है ऐसा व्यक्ति, आत्मवश्यै = अपने या बुद्धि के वश में चलने वाली, रागद्वेषयुक्तैः = राग एवं द्वेषादि विकारों से रहित, इन्द्रियैः = इन्द्रियों के द्वारा, विषयान् = विषयों में, चरन् = घूमता हुआ, प्रसादनम् = प्रसन्नता को, अधिगच्छति = प्राप्त कर लेता है।

हिन्दी अर्थ– जो बुद्धिपूर्वक निर्णय लेने में समर्थ है ऐसा व्यक्ति अपने नियन्त्रण में रहने वाली तथा राग द्वेषादि विकारों से रहित, इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ भी प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है।

विधेयात्मा– विधेयात्मा पद अन्तःकरण को वश में करने के अर्थ में आया है । साधक का अन्तःकरण अपने वश में रहना चाहिए । अन्तःकरण को वशीभूत किये बिना कर्मयोग की सिद्धि नहीं होती ।

आत्मवश्यैः रागद्वेषवियुक्तैः इन्द्रियैः– यहाँ पर आत्मवश्यैः पद इन्द्रियों को वश में करने के अर्थ में आया है । व्यवहार करते समय इन्द्रियाँ अपने वशीभूत होनी चाहिये और इन्द्रियाँ वशीभूत होने के लिए इन्द्रियों का राग–द्वेषरहित होना आवश्यक है । जो साधक राग–द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित हो जाता है, वह सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है ।

विषयान् चरन् – जिसका अन्तःकरण अपने वश में है और जिसकी इन्द्रियाँ राग–द्वेष से रहित है, ऐसा साधक इन्द्रियों से विषयों का सेवन तो करता है, पर विषयों का भोग नहीं करता । भोगबुद्धि से किया हुआ विषय सेवन पतन का कारण होता है ।

प्रसादमधिगच्छति– राग–द्वेष रहित होकर विषयों का सेवन करने से साधक अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी–

राग–द्वैष–वियुक्तैः – रागश्च, द्वेषश्च (द्वन्द्व समास) ।

रागद्वेषौ ताभ्याम् वियुक्तैः (तत्पुरुष समास) ।

आत्मवश्यैः – आत्मना वश्यैः (तत्पुरुष समास) ।

इन्द्रियैः – इन्द्रिय का तृतीया विभक्ति, बहुवचन ।

विषयान् – विषय का द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

चरन् – चर + शतृ (अस्), पुलिंग, प्रथमा, एकवचन ।

अधिगच्छति – अधि + गम्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, पुलिंग, एकवचन।

विधेयः – वि उपसर्ग + धा + यत् ।

प्रसादम् – प्र + सद् + घञ् ।

छन्द – अनुष्टुप ।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ (गीता – 2/67)

अन्वय– हि चरताम् इन्द्रियाणां यत् मनः अनुविधीयते। तत् अस्य प्रज्ञां वायुः अम्भसि नावम् इव हरति।

शब्दार्थ – हि = जिस कारण से, चरताम् = विषयों में विचरण करती हुई, इन्द्रियाणां = इन्द्रियों के मध्य में, यत् = जो, मनः = संकल्पविकल्पात्मक मन, अनुविधीयते = इन्द्रियों का अनुसरण करता रहता है, तत् = वह मन, अस्य = इस पुरुष की, प्रज्ञाम् = बुद्धि को, वायुः = हवा, अम्भसि = पानी में, नावम् = नौका के, इव = समान, हरन्ति = हर लेती है।

हिन्दी अर्थ– जिस प्रकार जल में चलने वाली नौका अपने अनुसार वायु प्रवाह से विपरीत दशा में खींच लेती है वैसे ही विषयों मे विचरण करती हुई इन्द्रियों के पीछे जो मन जाने लगता है वह मन ही अयोग्य पुरुष की बुद्धि को हर लेता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी–

चरताम् – चर + शतृ (अत्) नपुंसकलिंग, षष्ठी, बहुवचन ।

अम्भसि– 'अम्भस्' शब्द का सप्तमी विभक्ति, एकवचन ।

हरति– हृ + लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

नावम् – नौ द्वितीया बहुवचन ।

अणु – अनुहीते सहार्थे च इति विश्वः ।

विधीयते – वि + धा + यक् + लट् + त (भाववाच्य)

छन्द – अनुष्टुप

6.6 सारांश

- गीता का सामान्य परिचय प्राप्त हुआ।
- इन्द्रिय के व्युत्पत्तिपरक अर्थ का बोध हुआ।
- गीता में इन्द्रिय शब्द का अर्थ स्पष्ट हुआ तथा अन्य भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में इन्द्रिय के अर्थ को जाना।
- गीता में इन्द्रियों की संख्या का ज्ञान हुआ।
- गीता में इन्द्रिय स्वभाव से सम्बन्धित श्लोकों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

6.7 शब्दावली

विमूढात्मा – मूढ़ बुद्धि पुरुष

स्मरन् – चिन्ता करता हुआ

संयम्य – रोककर

प्रस्थानत्रयी – श्रुतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान, न्यायप्रस्थान

गोचराः – ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)

संयमन – इन्द्रिय–नियन्त्रण

विषय – शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध

अन्तःकरण – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तक

1. श्रीमद्भगवद्गीता, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २००६
2. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक–संजीवनी) हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०७१
3. गीता में आत्मप्रबन्धन, विनोद कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०१२
4. ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६६
5. भारतीय–दर्शन–बृहत्कोश, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००४

6.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. गीता में इन्द्रिय शब्द का अर्थ क्या है?
2. पाँच ज्ञानेन्द्रियों के नाम लिखिए ।
3. पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम लिखिए ।
4. गीता के अनुसार इन्द्रियों की संख्या कितनी है?

5. गीता के अनुसार इन्द्रियनिग्रह क्या है?

बोध प्रश्न – 2

1. गीता के अनुसार इन्द्रिय स्वभाव का विवेचन कीजिए ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न – 1

1. गीता में इन्द्रिय को विवेकशील मनुष्य के मन को हरने वाली कहा है ।
2. श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण – ये पाँच ज्ञार्नेन्द्रियाँ है ।
3. वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ है ।
4. गीता में इन्द्रियों की संख्या एकादश मानी गयी हैं ।
5. गीता के अनुसार अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाना इन्द्रिय–निग्रह कहलाता है ।

बोध प्रश्न – २

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 मन सहित इन्द्रिय निग्रह की आवश्यकता

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मन का स्वरूप

7.3 मन सहित इन्द्रिय–निग्रह की आवश्यकता

7.4 सारांश

7.5 शब्दावली

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

7.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गीता में मन के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे ।
- मन को नियन्त्रित करने के उपायों को जान सकेंगे ।
- अभ्यास और वैराग्य के बारे में अवगत हो सकेंगे ।
- मन सहित इन्द्रियनिग्रह का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली स्मरण कर पायेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या 7 'इन्द्रियनिग्रह' खण्ड के अन्तर्गत आती है। इस इकाई में मन का स्वरूप एवं मन सहित इन्द्रियनिग्रह की आवश्यकता के बारे में बताया गया है। मन का स्वरूप बड़ा चंचल है उसे वश में करना बहुत कठिन है। गीता में बताया गया है कि यदि कोई मनुष्य जीवन में अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहता है तो उसके लिए इन्द्रियनिग्रह आवश्यक है। इन्द्रियनिग्रह से तात्पर्य है कि इन्द्रियों को सभी सांसारिक विषय से हटाना। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया है कि अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से मन को सांसारिक विषयों से हटाना ही मनोनिग्रह है। मन का निग्रह करने का तात्पर्य है कि संकल्पविकल्पात्मक मन को सांसारिक विषयों से हटाकर परमात्मा की ओर लगा देना। उस समय मन की जिस–जिस विषय में प्रवृत्ति होती है, उस–उस विषय से हटाकर संयमित करना चाहिए। मन के द्वारा केवल परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए। अन्य सांसारिक विषयों का पूर्णरूप से त्याग करना चाहिए।

7.2 मन का स्वरूप

गीता में बताया गया है कि अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण का आत्मज्ञानपरक उपदेश सुनकर युद्ध के लिए तैयार होना चाहता है किन्तु अभी भी उसका मन विचलित हो रहा है जो

कि उसके सामने बड़ी समस्या है । अर्जुन मन को वश में करने की अपनी असमर्थता बताते हुए श्रीकृष्ण से कहते है –

चञ्चलं हि मनः कृष्ण! प्रमाथि बलवद्दृढ़म् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ (गीता – 6/34)

अन्वय – कृष्ण हि मनः चंचलम् बलवत् दृढ़म् प्रमाथि तस्य निग्रहम् अहम् वायोः इव सुदुष्करम् ।

शब्दार्थ – कृष्ण = हे कृष्ण!, हि = निश्चित रूप से, मन– यह संकल्प–विकल्पात्मक मन, चंचलम् = चंचल, बलवत् = बलशाली, दृढ़म् = दृढ़, प्रमाथि = झकझोर देने वाला है, तस्य = उस मन का, निग्रहम् = वश में करना, अहम् = मैं (अर्जुन), वायोः = वायु के, इव = समान, सुदुष्करम् = अत्यन्त कठिन, मन्ये = मानता हूँ ।

अर्थ– अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के सामने अपनी समस्या बताते हुए कहते हैं – हे कृष्ण! क्योंकि निश्चित रूप से मन बड़ा चंचल, बलशाली, दृढ़ तथा व्यक्ति को झकझोर देने वाला है अतः मन को वश में करना मैं वायु को रोकना के समान अत्यन्त कठिन समझता हूँ । इस चंचल, प्रमाथि, दृढ़ और बलवान् मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है । जैसे आकाश में विचरण करते हुए वायु को कोई मुट्ठी में नहीं पकड़ सकता, ऐसे ही इस मन को कोई पकड़ नहीं सकता, अतः इसका निग्रह करने को मैं महान् दुष्कर मानता हूँ।

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि– नेत्र, कान आदि सब इन्द्रियों में मन मुख्य है । सब इन्द्रियाँ मन के साथ रहने से ही काम करती हैं । मन साथ में न रहने से इन्द्रियाँ अपना काम नहीं करती है । यदि मन का साथ न हो तो इन्द्रियों के सामने विषय आने पर भी विषयों का ज्ञान नहीं होता । मन में यह विशेषता भगवान् से ही आयी है । इसलिए भगवान् ने मन को अपनी विभूति बताया है ।

7.3 मन सहित इन्द्रिय निग्रह की आवश्यकता

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तपः॥ (गीता – 2/3)

अन्वय – पार्थ! क्लैब्यं मास्म गमः एतत् त्वयि न उपपद्यते। परन्तप! क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ।

शब्दार्थ– पार्थ = हे अर्जुन!, क्लैब्यं = कायरता को, मा = मत, स्म गमः = प्राप्त हो, एतत् = यह कायरता, त्वयि = अर्जुन के विषय में, न = नहीं, उपपद्यते = शोभा नहीं देती, परन्तप = शत्रुओं को कष्ट देने वाले हे अर्जुन! क्षुद्रं = तुच्छ, हृदयदौर्बल्यम् = हृदय की कमजोरी को, त्यक्त्वा = त्यागकर, उत्तिष्ठ = युद्ध के लिए खड़े हो जाओ।

हिन्दी अर्थ – हे अर्जुन! कायरता के मार्ग का अनुसरण मत कर। यह कायरता का मार्ग आपसे मेल नहीं खाता। इसलिए अपने शत्रुओं को कष्ट देने वाले हे अर्जुन! हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को छोड़कर युद्ध के लिए खड़ा हो।

क्लैब्यं मा स्म गमः– अर्जुन कायरता के कारण युद्ध करने में अधर्म और युद्ध करने में धर्म मान रहे थे । अतः अर्जुन को चेतना के लिए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि युद्ध न करना धर्म की बात नहीं है, यह तो नपुंसकता है । इसलिए हे अर्जुन तुम इस नपुंसकता को छोड़ दो ।

नैतत्त्वय्युपपद्यते– तुम्हारे में यह नपुंसकता नहीं आनी चाहिये क्योंकि तुम कुन्ती जैसी वीर क्षत्राणी माता के पुत्र हो और स्वयं भी शूरवीर हो । तात्पर्य है कि जन्म से और अपनी प्रकृति से भी यह नपुंसकता (कायरता) तुम्हारे में सर्वथा अनुचित है ।

परन्तप– हे अर्जुन तुम स्वयं परन्तप हो अर्थात् शत्रुओं को तपानेवाले हो, तो क्या तुम इस समय युद्ध से विमुख होकर अपने शत्रुओं को हर्षित करोगे?

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ– यहाँ क्षुद्रम् पद के दो अर्थ होते हैं –

1) यह हृदय की दुर्बलता तुच्छता को प्राप्त कराने वाली है अर्थात् मुक्ति, स्वर्ग अथवा कीर्ति को देने वाली नहीं है । अगर तुम इस तुच्छता का त्याग नहीं करोगे तो स्वयं तुच्छ हो जाओगे।

2) यह हृदय की दुर्बलता तुच्छ चीज है । तुम्हारे जैसे शूरवीर के लिए तुच्छ चीज का त्याग करना कोई कठिन काम नहीं है।

टिप्पणी –

दौर्बल्यम् – दुर्बल + ष्यञ् ।

त्वयि – युष्मत् शब्द, सप्तमी विभक्ति, एकवचन ।

त्यक्त्वा – त्यज् + कत्वा प्रत्यय ।

उत्तिष्ठ – उत् + स्था (तिष्ठ) लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन ।

उपपद्यते – उप + पद, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, आत्मनेपद।

छन्द – अनुष्टुप

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ (गीता –4/5)

अन्वय – अर्जुन! मे तव च बहूनि जन्मानि व्यतीतानि परन्तप! तानि सर्वाणि अहं वेद, त्वं न वेत्थ।

शब्दार्थ– अर्जुन = हे अर्जुन! मे = मेरे, च = और, तव = तेरे, बहूनि = बहुत सारे, जन्मानि = जन्म, व्यतीतानि = बीत चुके हैं, परन्तप = हे परम तपस्वी अर्जुन, तानि = उन, सर्वाणि = सभी, जन्मानि = जन्मों को, अहम् = मैं. वेद = जानता हूँ, त्वम् = तुम, न = नहीं, वेत्थ = जानते हो।

अर्थ– भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं – हे अर्जुन! मेरे और तेरे पहले बहुत जन्म बीत चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, तू नहीं जानता, क्योंकि पुण्य–पाप आदि के संस्कारों से तेरी ज्ञानशक्ति आच्छादित हो रही है। परन्तु मैं (श्रीकृष्ण) नित्य–शुद्ध–मुक्त–स्वभाव वाला हूँ, इस कारण मेरी ज्ञानशक्ति आवरणरहित है, इसलिए हे परन्तप ! मैं सब कुछ जानता हूँ।

व्याकरणिक टिप्पणी –

अर्जुन– अर्ज + उनन् णिलुक् च ।

परन्तप– परान् शत्रून् तापयति ।

वेत्थ– विद् धातु, मध्यमपुरुष, एकवचन ।

व्यतीतानि– वि उपसर्ग + अति उपसर्ग + इ + क्त, नपुसंकलिंग, प्रथमा बहुवचन ।

7.4 सारांश

- गीता में मन के स्वरूप को जानने का सुअवसर प्राप्त हुआ।
- भगवान् श्रीकृष्ण की अलौकिक शक्ति को जाना।
- जीवन में कायरता का त्यागकर निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त हुई।
- हमेशा कर्तव्यपथ पर चलते हुए धर्म के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त हुआ।
- जीवन में तुच्छता का परित्याग करना चाहिए यह बोध हुआ ।

7.5 शब्दावली

अभ्यास – किसी भी कार्य को बार–बार करना

वैराग्य – सांसारिक विषयों का त्याग

कायरता – कमजोरी

स्वर्ग – नित्य सुख (परम सुख)

मुक्ति – त्रिविध दुःखों का विनाश

नित्य – विनाशरहित (परमात्मा)

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

1. श्रीमद्भगवद्गीता, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २००६
2. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक–संजीवनी) हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०७१
3. गीता में आत्मप्रबन्धन, विनोद कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०१२
4. ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६६
5. भारतीय–दर्शन–बृहत्कोश, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००४

7.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) गीता के अनुसार मन का स्वरूप क्या है ?

.....

.....

2) मन का निग्रह करना किसके समान है ।

.....

.....

3) क्षुद्र शब्द का अर्थ बताइये।

.....

.....

4) गीता के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण को सब कुछ जानने वाला क्यों कहा है ?

.....

.....

बोध प्रश्न 2

1. गीता के अनुसार मन सहित इन्द्रियनिग्रह की आवश्यकता क्यों है ? इसका विवेचन कीजिए।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न – 1

1) गीता में मन को बड़ा चंचल, बलशाली, दृढ़ तथा व्यक्ति को झकझोर देने वाला बताया गया है ।

2) मन का निग्रह करना वायु को रोकने के समान अत्यन्त कठिन है ।

3) क्षुद्र शब्द का अर्थ तुच्छता या कमजोरी है।

4) गीता के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ होने के कारण त्रिकालदर्शी है इसलिए उनको सब कुछ जानने वाला कहा है।

बोध प्रश्न – 2

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे।

इकाई 8 गीता में इन्द्रियनिग्रह व इन्द्रियनिग्रह फल

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 गीता में इन्द्रियनिग्रह

8.3 इन्द्रियनिग्रह फल

8.4 सारांश

8.5 शब्दावली

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

8.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- इन्द्रियनिग्रह के बारे में जान सकेंगे ।
- इन्द्रियनिग्रह के साधनों से परिचित हो सकेंगे ।
- इन्द्रियनिग्रह के द्वारा प्राप्त फल से अवगत हो सकेंगे।
- इन्द्रियनिग्रह के द्वारा साधक स्थितप्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त हो जाता है इसका अवबोध प्राप्त कर सकेंगे ।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली स्मरण कर पायेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या 8 'इन्द्रियनिग्रह' खण्ड के अन्तर्गत आती है । इस इकाई में इन्द्रियनिग्रह एवं इन्द्रियनिग्रह के फल विषय में वर्णन किया गया है । मानव के स्वस्थ विकास के लिए इन्द्रियनिग्रह करना आवश्यक है । मनुष्य इन्द्रियनिग्रह के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है । मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाना चाहिए । जब कोई मनुष्य अपनी इन्द्रियों को समस्त सांसारिक विषयों से हटाकर किसी एक विषय में एकाग्र कर ले उसी का नाम इन्द्रियनिग्रह है ।

8.2 गीता में इन्द्रियनिग्रह

इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति विषयों की ओर दौड़ना है, अतः सांसारिक विषयों की ओर गई हुई इन्द्रियों को उन विषयों से हटाना इन्द्रियनिग्रह है । जब इन्द्रियनिग्रह द्वारा इन्द्रियों का व्यापार रुक जाता है तो संकल्पविकल्पात्मक मन भी अध्यवसायात्मक बुद्धि के अनुसार अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो जाता है । गीता में कछुए का उदाहरण देते हुए इन्द्रिय–निग्रह करने का मार्ग प्रशस्त किया है –

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिताः ॥ (गीता – 2/58)

अन्वय – च कूर्मः अंगानि इव अयम् यदा सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

शब्दार्थ – च = और (जिस तरह), कूर्म = कछुआ (अपने), अंगानि = अंगों को, इव = जैसे (समेट लेता है वैसे ही), अयम् = यह पुरुष, यदा = जब, सर्वशः = सब ओर से (अपनी), इन्द्रियाणि = इन्द्रियों को, इन्द्रियार्थेभ्यः = इन्द्रियों के विषयों से, संहरते = समेट लेता, तस्य = उसकी, प्रज्ञा = बुद्धि, प्रतिष्ठिता = स्थिर हो जाती है ।

हिन्दी अर्थ – जिस तरह कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है ।

व्याख्या – प्रस्तुत श्लोक में कछुए का दृष्टान्त देने का तात्पर्य है कि जैसे कछुआ चलता है तो उसके छः अंग (चार पैर, एक पूँछ और एक मस्तक) दीखते हैं । परन्तु जब वह अपने अंगों को छिपा लेता है तब केवल उसकी पीठ ही दिखाई देती है । ऐसे ही पुरुष जब पाँच इन्द्रियाँ और मन को अपने–अपने विषयों से हटा लेता है, तब वह स्थितप्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त कर लेता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी –

अंगानि– नपुसंकलिंग, बहुवचन ।

सर्वशः – सर्व + शस् (तद्धित प्रत्यय) ।

इन्द्रियार्थेभ्यः – इन्द्रियाणाम् अर्थाः इन्द्रियार्थाः तेभ्यः पञ्चमी तत्पुरुष ।

संहरते– सम् + हृ + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन (आत्मने पद)

प्रतिष्ठिताः – प्रति + स्था + क्त + टाप् ।

छन्द – अनुष्टुप ।

मनोनिग्रह के साधन – अभ्यास और वैराग्य

असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ (गीता – 6/35)

अन्वय – महाबाहो! असंशयम् मनः चलम् दुर्निग्रहम् । तु कौन्तेय! अभ्यासेन वैराग्येण च गृह्यते ॥

शब्दार्थ– महाबाहो! = हे महान् भुजाओं वाले अर्जुन!, असंशयम् = बिना किसी संदेह के, मनः = मन, चलम् = अस्थिर, दुर्निग्रहम् = कठिनता से वश में होने वाला है, तु = किन्तु, कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र अर्जुन, अभ्यासेन = अभ्यास के द्वारा, च = और, वैराग्येण = वैराग्य के द्वारा, गृह्यते = वश में कर लिया जाता है।

हिन्दी अर्थ – भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन की समस्या को सुनकर कहते है कि हे महान् भुजाओं वाले अर्जुन! इसमें कोई संदेह नहीं है कि मन बड़ा चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है किन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन इस चंचल मन को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा अपने वश में किया जा सकता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी –

असंशयम् – न संशयम् असंशयम् (नञ् तत्पुरुष समास)

दुर्निग्रहम् – दुर् + नि + ग्रह् + अप्, दुष्करं निग्रहम् दुर्निग्रहम् (प्रादि समास)

गृह्यते –ग्रह + यक् + लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

8.3 इन्द्रियनिग्रह फल

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (गीता – 2/61)

अन्वय – तानि सर्वाणि संयम्य युक्तः मत्परः आसीत हि यस्य इन्द्रियाणि वशे तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

शब्दार्थ – तानि = उन, सर्वाणि = सम्पूर्ण इन्द्रियों (ग्यारह इन्द्रियों) को, संयम्य = वश में करके, युक्तः = समाहितचित्त हुआ, मत्परः = मेरे परायण , आसीत = बैठे, हि = क्योंकि, यस्य = जिस पुरुष के, इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ, वशे = वश में होती हैं, तस्य = उसकी, प्रज्ञा = बुद्धि, प्रतिष्ठिता–स्थिर होती है ।

हिन्दी अर्थ – भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मयोगी साधक को अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थित हो जाती है ।

व्याख्या – तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः – जो बलपूर्वक मन का हरण करने वाली इन्द्रियाँ हैं, उस सबको वश में करके विषयों में विचलित न होने देकर स्वयं मेरे परायण हो जाये । साधक इन्द्रियों का संयमन करने में कभी अपने बल का अभिमान न करे उसमें अपने उद्योग को कारण न माने, केवल भगवत्कृपा को ही कारण माने कि मेरे को इन्द्रियों के संयमन में जो सफलता मिली है, वह केवल भगवान् की कृपा से मिली है ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता– जो साधक अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लेते हैं, वह स्थितप्रज्ञ है। स्थितप्रज्ञ पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं और उसकी रसबुद्धि निवृत्त हो जाती है।

व्याकरणिक टिप्पणी –

संयम्य – सम् + यम् + कत्वा (ल्यप्) ।

युक्तः – युज् + क्त, पुल्लिंग एकवचन ।

आसीत् – आस् + विधिलिंग लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

मत्परः – मयि परः मत्परः, सप्तमी तत्पुरुष ।

छन्द – अनुष्टुप

8.4 सारांश

- गीता में इन्द्रियनिग्रह के बारे में जाना ।
- इन्द्रियनिग्रह द्वारा प्राप्त फल के विषय में ज्ञान प्राप्त हुआ ।

- स्थितप्रज्ञ के बारे में बोध हुआ ।
- इन्द्रिय संयमन के विषय में अवबोध हुआ ।

8.5 शब्दावली

मन – संकल्प–विकल्पात्मक इन्द्रिय।

परायण – कृष्णभक्ति में लीन होना।

संयमन – इन्द्रियों पर नियन्त्रण ।

निवृत्त – हटाना ।

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद्भगवद्गीता, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २००६
2. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक–संजीवनी) हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०७१
3. गीता में आत्मप्रबन्धन, विनोद कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०१२
4. ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६६
5. भारतीय–दर्शन–बृहत्कोश, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००४

8.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्न 1

1) इन्द्रियाँ कितनी है ?

.....

.....

2) इन्द्रियनिग्रह का अर्थ लिखिए ।

.....

.....

3) पुरुष की बुद्धि स्थिर कब होती है ?

.....

.....

.....

4) इन्द्रियनिग्रह के दो उपाय कौन–से है ?

.....

.....

बोध प्रश्न 2

1. गीता में इन्द्रियनिग्रह का अर्थ स्पष्ट करते हुए इन्द्रियनिग्रह–फल का विवेचन कीजिए।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न – 1

1) इन्द्रियाँ ग्यारह हैं – पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन ।

2) जब कोई साधक अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटा लेता है, उसे इन्द्रियनिग्रह कहते है ।

3) जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है, उस पुरुष की बुद्धि उसके वश में होती है ।

4) गीता में इन्द्रिय निग्रह के दो उपाय है – अभ्यास और वैराग्य ।

बोध प्रश्न – 2

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 गीता में स्थितधी की प्रशंसा

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 स्थितप्रज्ञ का लक्षण

9.3 स्थितधी की प्रशंसा

9.4 सारांश

9.5 शब्दावली

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

9.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गीता में स्थितप्रज्ञ के स्वरूप से अवगत हो सकेंगे ।
- गीता में स्थितधी की प्रशंसा के बारे में जान सकेंगे ।
- परमात्म–स्वरूप की प्राप्ति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने गीता में इन्द्रियनिग्रह व इन्द्रियनिग्रह फल के विषय में सुस्पष्ट तरीके से ज्ञान प्राप्त किया । आप यह जानते है कि कोई भी मनुष्य इन्द्रियनिग्रह के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। इन्द्रियनिग्रह के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि को स्थिर करना आवश्यक है । स्थिर बुद्धि से तात्पर्य है कि बुद्धि को सब ओर से हटाकर किसी एक विषय में अध्यवसाय करना । जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही परमशान्ति को प्राप्त होता है।

9.2 स्थितप्रज्ञ का लक्षण

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं जो मनुष्य समस्त कामनाओं का परित्याग करके अपनी बुद्धि को स्थिर कर लेता है वह मानसिक द्वन्द्वों से पीड़ित नहीं होता है । स्थिरबुद्धि वाला मनुष्य अपने समस्त कार्यों को पूर्ण करता हुआ आत्मसन्तुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव करता है –

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ (गीता – 2/55)

अन्वय – पार्थ यदा मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति तदा आत्मना एव आत्मनि तुष्टः स्थितप्रज्ञः उच्यते ।

शब्दार्थ – पार्थ = हे पृथा पुत्र (अर्जुन), यदा = जिस समय में (यह पुरुष), मनोगतान् = मन में स्थित, सर्वान् = सम्पूर्ण, कामान् = कामनाओं को, प्रजहाति = त्याग देता है, तदा = उस समय में, आत्मना = आत्मा से, एव = ही, आत्मनि = आत्मा में, तुष्टः = संतुष्ट हुआ, स्थितप्रज्ञः = स्थिरबुद्धि वाला, उच्यते = कहा जाता है।

हिन्दी अर्थ – भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पृथा पुत्र अर्जुन ! जिस समय मनुष्य अपने मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग कर देता है और आत्मा (स्वयं) द्वारा आत्मा में (स्वयं के अन्दर) जब संतुष्ट रहता है उस समय वह व्यक्ति स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला कहलाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी –

पार्थ– पृथा + अन् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय)

प्रजहाति– प्र + हा + लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

मनोगतान् – मनस् + (गम् + क्त = गत), मनस् + गत, सन्धि होकर मनोगत । द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

आत्मना– 'आत्मन्' का तृतीया विभक्ति एकवचन ।

आत्मनि– 'आत्मन्' का सप्तमी विभक्ति, एकवचन ।

तुष्टः – तुष् + क्त ।

स्थितप्रज्ञ– स्थिता प्रज्ञा यस्य सः स्थितप्रज्ञः, बहुव्रीहि समास

छन्द – अनुष्टुप ।

9.3 स्थितधी की प्रशंसा

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ (गीता –2/70)

अन्वय – यद्वत् आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठम् समुद्रम् आपः प्रविशन्ति तद्वत् यम् सर्वे कामाः प्रविशन्ति सः शान्तिम् आप्नोति न कामकामी।

शब्दार्थ – यद्वत् = जैसे, आपूर्यमाणम् = चारों ओर से जल द्वारा परिपूर्ण, अचलप्रतिष्ठम् = अचल प्रतिष्ठावाले, समुद्रम् = समुद्र के प्रति, आपः = नाना नदियों के जल, प्रविशन्ति = समा जाते हैं, तद्वत = वैसे ही, यम् = जिस स्थिर बुद्धि पुरुष के प्रति, सर्वे = सम्पूर्ण, कामाः = भोग, किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही, प्रविशन्ति = समा जाते हैं, सः = वह पुरुष, शान्तिम् = परम शान्ति को, आप्नोति = प्राप्त हो जाता है, न = न कि, कामकामी = भोगों को चाहने वाला।

हिन्दी अर्थ – जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं ।

संसार के सम्पूर्ण भोग उस परमात्म तत्त्व को जानने वाले संयमी मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उसके सामने आते हैं, पर वे उसके कह जाने वाले शरीर और अन्तःकरण में

सुख–दुःख रूप विकार पैदा नहीं कर सकते । अतः वह परम शान्ति को प्राप्त होता है।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है कि जो कामनाओं का ध्यान करके इच्छा करता है वह उन–उन कामनाओं को प्राप्त करता है । परन्तु जो ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर निरिच्छ परिपूर्ण आप्तकाम कृत्यकृत्य पुरुष की सम्पूर्ण कामनाएँ समाप्त होकर आत्मा में तृप्त हो जाती है उसकी सब कामनाएं इस जीवन में ही विलीन हो जाती है । (मुण्डकोपनिषद् 3/2/2)

व्याकरणिक टिप्पणी –

आपूर्यमाणाम् – आ + पूर्य + शानच् तुम् ।

अचलप्रतिष्ठम् – अचला प्रतिष्ठा यस्य तम् ।

आप : – सद्वैव बहुवचन में प्रयुक्त 'अपस्' का प्रथमा बहुवचन ।

शान्ति– शम् + क्तिन् ।

यद्वत् – यद् + वति ।

तद्वत् – तद् + वति ।

छन्द – उपजाति ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।(गीता –2/72)

अन्वय– पार्थ एषा ब्राह्मी स्थितिः एनाम् प्राप्य न विमुह्यति। अन्तकाले अपि अस्याम् स्थित्वा ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति।।

शब्दार्थ – पार्थ = हे अर्जुन, एषा = यह, ब्राह्मी = ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की, स्थितिः = स्थिति है, एनाम् = इसको, प्राप्य = प्राप्त होकर, न = नहीं, विमुह्यति = मोहित नहीं होता है, अन्तकाले = अन्तकाल में, अपि = भी, अस्याम् = इस निष्ठा में, स्थित्वा = स्थित होकर, ब्रह्मनिर्वाणम् = ब्रह्मानन्द को, ऋच्छति = प्राप्त हो जाता है ।

हिन्दी अर्थ – हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्रह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ– यह ब्राह्मी स्थिति है अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त हुए मनुष्य की स्थिति है । अहंकार रहित होने से जब व्यक्तित्व मिट जाता है, तब उसकी स्थिति स्वतः ही ब्रह्म में होती है ।

नैनां प्राप्य विमुह्यति– जब तक शरीर में अहंकार रहता है, तभी तक मोहित होने की सम्भावना रहती है । परन्तु जब अहंकार का सर्वथा अभाव होकर ब्रह्म में अपनी स्थिति का अनुभव हो जाता है, तब व्यक्तित्व टूटने के कारण फिर कभी मोहित होने की सम्भावना नहीं रहती ।

स्थितत्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति– मनुष्य शरीर केवल परमात्म प्राप्ति के लिये ही मिला है । जो मनुष्य जड़ता से अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर लेता है, वह जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि जो कोई अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ प्राण छोड़ता है, वह मेरे को ही प्राप्त होता है।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए महाभारत में कहा है कि बुद्धि से सर्व शारीरिक एवं मानसिक संकल्पों को छोड़कर मनुष्य उस निर्वाण को प्राप्त करता है जैसे अग्नि बिना इन्धन के परमशान्ति को प्राप्त करती है । (महाभारत – 14.5.53)

व्याकरणिक टिप्पणी –

स्थितिः – स्था + क्तिन् । स्त्रीलिंग में कृत् प्रत्यय ।

प्राप्य – प्र + आप् + कत्वा (ल्यप्)

स्थित्वा – स्था + कत्वा ।

ब्राह्मी – ब्रह्मन् + अण् (अजातौ) ङीष् ।

निर्वाणं – निर्गतं वानं गमनं यस्मिन् ब्रह्मणि (नीलकण्ठी) निर् + वा + युच्

ऋच्छति – ऋ + लट् + तिप् ।

छन्द – अनुष्टुप

9.4 सारांश

- स्थितप्रज्ञ के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ।
- स्थितप्रज्ञ परमात्मा की प्राप्ति का साधन है यह अवबोध हुआ ।
- जीवन में परमशान्ति की प्राप्ति कैसे हो इसके बारे जाना ।
- सांसारिक भोगों के त्याग से आत्मिक शान्ति सम्भव है यह जाना ।

9.5 शब्दावली

ब्रह्मानन्द – ब्रह्म शब्द आनन्द का वाचक है

आत्मना – आत्मा (स्वयं) के द्वारा

अहंकार – अभिमान

निर्वाण – त्रिविध दुःखों से मुक्ति

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

1. श्रीमद्भगवद्गीता, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २००६
2. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक–संजीवनी) हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०७१
3. गीता में आत्मप्रबन्धन, विनोद कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०१२
4. ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६६
5. भारतीय–दर्शन–बृहत्कोश, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००४

9.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1) स्थितप्रज्ञ क्या है ?

.....

.....

2) जन्म–मरण से किस प्रकार के मनुष्य मुक्त हो जाते है ?

.....

.....

बोध प्रश्न – 2

1. गीता के अनुसार स्थितधी की प्रशंसा का वर्णन कीजिए ।

.....

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न 1

1) जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर संतुष्ट रहता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते है।

2) जो मनुष्य जडता से अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर लेता है, वह जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है ।

बोध प्रश्न– 2

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY